Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:3(5), March 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की सामयिक प्रासंगिकता एवं चुनौतियाँ उत्तराखण्ड के विशेष संदर्भ में

[1]Dr. Ravi Kant Kumar, [2]Dr. Ajay Singh, [3]Dr. Ashish Kumar and [4]Dr. Anuj Kumar
[1]Department of Sociology, SALS, Uttaranchal University, Dehradun,Uttarakhand, India
[2]Department of Chemistry, SALS, Uttaranchal University, Dehradun,Uttarakhand, India
[3]Department of Chemistry, SALS, Uttaranchal University, Dehradun,Uttarakhand, India
[4]Department of Chemistry, SALS, Uttaranchal University, Dehradun,Uttarakhand, India

सारांश

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय संकट भारत ही नहीं अपितु विश्व समुदाय के लिए गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का क्षरण, जल संकट तथा प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति आदि इसी संकट के बढ़ते प्रभाव का परिणाम मात्र है। इन घटनाओं पर नियंत्रण या कमी के दृष्टिकोण से विभिन्न पर्यावरणविदों, सामाजिक विचारकों एवं सरकारी तंत्र अपने–अपने स्तर से निरंतर प्रयासरत हैं बावजूद इसके इनमें कमी के संकेत नहीं मिल रहे। ऐसे समय में यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन ज्ञान प्रणालियों की ओर पुनः दृष्टि डालें, जो प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर जीवन जीने की कला सिखाती हैं। यह सैद्धांतिक आधार पर निर्मित नवीन ज्ञान के विपरीत प्रकृति के साथ सहजीवन व्यतीत करने के क्रम में प्राप्त पीढ़ियों के व्यवहारिक अनुभव पर आधारित होता है। यह अनुभव आधारित ज्ञान हमें पर्यावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करना सिखाती है, प्रकृति का संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा सुनियोजित उपयोग की कला सिखाती है, जो वर्तमान समय की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में एक हैं। हालांकि बदलती मानवीय प्रवृत्तियों के कारण आज यह ज्ञान निरंतर अपना अस्तित्व खो रहे हैं। लेकिन यह कहना कि बदलते समय के साथ स्थानीय संस्कृति में निहित पर्यावरण संबंधी पारंपरिक ज्ञान की प्रासंगिकता कम हुई है अतिशयोक्ति होगी। इस ज्ञान की वर्तमान आवश्यकताओं का आकलन इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि आज हम जब भी स्वयं को मजबूर पाते हैं, समाधान की तलाश आपे संस्कृति में निहित ज्ञान में ही करते हैं। इस ज्ञान की प्रासंगिकता का एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि 21वीं सदी की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी स्थानीय संस्कृति एवं उसमें निहित ज्ञान को महत्वपूर्ण माना गया है तथा आधुनिक ज्ञान के साथ इसके समावेशीकरण पर जोर दिया गया है। यह कदम न केवल अपना अस्तित्व खो रहे स्थानीय संस्कृति में निहित ज्ञान के संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है बल्कि अपना अस्तित्व खो चुके ज्ञान को पुनर्जीवित करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण पहल है। उत्तराखण्ड की जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान भी स्थानीय संस्कृति में निहित ज्ञान का ही एक महत्वपूर्ण अंश है। यह अंश उत्तराखण्ड जैसी महत्वपूर्ण पर्वतीय क्षेत्रों एवं तराई भावर के क्षेत्रों में निवासरत जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है, जो पीढ़ियों से पर्यावरण के साथ सहअस्तित्व की जिन्दगी जीता आया है, से प्राप्त अनुभव के आधार पर निर्मित है। यही कारण है कि आधुनिक समय में इनकी प्रासंगिकता का आकलन करना तथा इसके संरक्षण एवं प्रसार की दिशा में आ रही महत्वपूर्ण बाधाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। विषय के इसी आवश्यकता के दृष्टिगत प्रस्तुत शोध पत्र हेतु ''जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की सामयिक प्रासंगिकता एवं चुनौतियाँ उत्तराखण्ड के विशेष संदर्भ में'' विषय का चयन किया गया है।

यह शोध पत्र मूल रूप से द्वितीयक तथ्यों पर आधारित एक मौलिक रचना है। इसमें उत्तराखण्ड के जनजातीय समुदायों (भोटिया, थारू, जौनसारी, बुक्सा एवं राजी) की जीवनशैली, परंपराओं और सांस्कृतिक व्यवहारों में अंतर्निहित पर्यावरणीय ज्ञान का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह ज्ञान मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से संकलित की गयी सूचनाओं पर आधारित है, जिसके लिए विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रों एवं वेबसाइटों की सहायता लिया गया है। संकलित तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष का आलेखन किया गया है। निष्कर्ष में मूल रूप से पाया गया है कि जनजातीय संस्कृति में निहित ज्ञान केवल अतीत की धरोहर नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है, जरूरत सिर्फ इस बात की है कि इस ज्ञान को समुचित रूप से संरक्षितकिया जाए।

शब्द कुंजी : जनजातीय संस्कृति, पर्यावरणीय ज्ञान, पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता, जल प्रबंधन, वन संरक्षण, लोकज्ञान

प्रस्तावना

आज हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। इस सदी के विगत 25 वर्षों तक में मानव अभूतपूर्व तकनीकी उपलब्धियों प्राप्त कर ली हैं बावजूद इसके हम पर्यावरणीय असंतुलन की समस्या से जूझ रहे हैं। ऐसे में यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है कि क्या आधुनिक विकास एवं उपलब्धियां इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकती है? और यही प्रश्न हमें अपनी पारंपरिक संस्कृति में निहित ज्ञान प्रणालियों की ओर झांकने एवं उसका सहारा लेने के लिए अभिप्रेरित करती है, जो वर्षों के अनुभवों एवं व्यावहारिकता पर आधारित है। विशेष रूप से जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक विरासत में निहित उस ज्ञान की ओर, जो प्रकृति के साथ सहजीवी संबंधों पर आधारित है।

उत्तराखण्ड, जो अपनी भौगोलिक विविधता और सांस्कृतिक समृद्धि के लिए जाना जाता है, की जनजातीय संस्कृति पर्यावरण के साथ गहरे संबंध का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। यहाँ के जनजातीय समुदायों का जीवन जंगल, जल स्रोतों, पर्वतों और जैव विविधता के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि उनका प्रत्येक क्रियाकलाप पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखकर किया जाता है। इन समुदायों के पारंपरिक ज्ञान में निहित पर्यावरणीय समझ केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भी है। वृक्षों, नदियों और पर्वतों को देवतुल्य मानना, संसाधनों के उपयोग में संयम रखना तथा प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव रखना; ये सभी यहाँ की जनजातीय संस्कृति में निहित प्यावरणीय ज्ञान के महत्वपूर्ण तत्व हैं। यही तत्व परंपरा से इस क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदा के असंतुलित दोहन पर नियंत्रण बनाए रखने का साधन रही है। जिसके कारण इस क्षेत्र में पर्यावरणणीय समस्याएं अपेक्षाकृत कम हैं। ऐसा इसलिए कहा जा रहा

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:3(5), March 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

है, क्योंकि प्रकृति का अनियोजित दोहन एवं पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती समस्या किसी एक क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है। इसके समाधान के लिए या इसपर नियंत्रण के लिए समस्त समुदायों को चाहे वह नगरीय क्षेत्र में निवासरत हों, या ग्रामीण क्षेत्र में या फिर दुर्गम पर्वतीय एवं घने जंगलों के बीच निवासरत हों, को सम्मिलित प्रयास करना होगा। स्थानीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की इसी आवश्यकताओं के कारण प्रस्तुत शोध पत्र हेतु ''जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की सामयिक प्रासंगिकता एवं चुनौतियाँ उत्तराखण्ड के विशेष संदर्भ में'' विषय का चयन किया गया है।

पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान (ज्तंकपजपवदंस म्बवसवहपबंस ज्ञदवूसमकहम) वह ज्ञान है, जो किसी समुदाय द्वारा अपने दीर्घकालीन अनुभवों, अवलोकनों और प्रकृति के साथ निरंतर अंतःक्रिया के माध्यम से विकसित किया जाता है। यह ज्ञान पुस्तकीय न होकर व्यवहारिक होता है और पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परंपराओं, लोककथाओं, गीतों और सामाजिक व्यवहारों के माध्यम से संप्रेषित होता रहता है। यदि हम जनजातीय समाज में निहित पारंपरिक ज्ञान की बात करें तो जनजातीय समाजों में यह ज्ञान केवल जानकारी का संग्रह नहीं होता, बल्कि यह जीवन जीने की एक संपूर्ण पद्धति का हिस्सा होता है। इसमें प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, संरक्षण और पुनरुत्पादन के संबंध में गहन समझ निहित होती है। उदाहरण के लिए, किस मौसम में कौन–सी फसल बोई जानी चाहिए, किस प्रकार के पेड़ों को काटना उचित है और किन्हें संरक्षित रखना चाहिए, जल स्रोतों का उपयोग किस प्रकार किया जाए आदि ये सभी बातें इस ज्ञान का हिस्सा हैं। इस ज्ञान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यह स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित होता है। इसलिए यह अत्यंत व्यावहारिक और प्रभावी होता है। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान जहाँ सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित होता है, वहीं पारंपरिक ज्ञान स्थानीय आवश्यकताओं और अनुभवों पर आधारित होता है। यही कारण है कि यह विशेष रूप से स्थानीय स्तर पर उत्पन्न समस्याओं के समाधान में अधिक कारगर सिद्ध होता है।

पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसका नैतिक और सांस्कृतिक आधार है। जनजातीय समाजों में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं माना जाता है बल्कि उसे एक जीवंत सत्ता के रूप में देखा जाता है। इसीलिए वृक्षों, नदियों और पर्वतों की पूजा की जाती है और उनके प्रति सम्मान का भाव रखा जाता है। यह दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण को केवल एक व्यावहारिक आवश्यकता न बनाकर एक नैतिक कर्तव्य के रूप में स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त, यह ज्ञान संसाधनों के संतुलित उपयोग पर बल देता है। इसमें 'जितनी आवश्यकता हो उतना ही उपयोग' का सिद्धांत निहित होता है, जो सतत विकास की आधुनिक अवधारणा के साथ पूर्णतः मेल खाता है। इस प्रकार, पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य उत्तराखण्ड के जनजातीय समुदायों के पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान को समझना है। यह ज्ञान उनके दैनिक जीवन के क्रियाकलापों, आजीविका और सांस्कृतिक परम्पराओं में निहित है। साथ ही इस अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि सामयिक परिवेश में इसकी प्रासंगिकता तथा शैक्षिक पाठ्यक्रमों में इसके समावेशन की संभावनाएं क्या हैं? इस उद्देश्य को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं –

- उत्तराखण्ड की जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरण संबंधी पारंपरिक ज्ञान की पहचान करना।
- जनजातीय संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।
- सामयिक परिवेश में पर्यावरणीय ज्ञान की चुनौतियों का अध्ययन करना।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक तथ्यों पर आधारित एक मौलिक रचना है। इसके लिए विभिन्न संदर्भ पुस्तकों, शोध पत्रों, प्रमाणिक वेबसाइटों एवं समाचार पत्र में प्रकाशित सूचनाओं आदि द्वितीयक स्रोतों के के माध्यम से आवश्यक सूचनाओं का संकलन किया गया है। इस प्रकार संकलित सूचनाओं का वर्गीकरण एवं विश्लेषण कर निष्कर्ष का आलेखन किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण

उत्तराखण्ड भारत प्रमुख पर्वतीय राज्य है। एक ऐसा पर्वतीय राज्य जहाँ प्राकृतिक विविधता और सांस्कृतिक बहुलता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। हिमालय की गोद में स्थित यह प्रदेश अपने पर्वतीय भूभाग, घने वनों, नदियों और समृद्ध जैव विविधता के लिए जाना जाता है। यहाँ का लगभग 88 प्रतिशत भूभाग पर्वतीय है, जो मानव जीवन को चुनौतीपूर्ण तो बनाता ही है, साथ ही प्रकृति के साथ गहरे संबंध स्थापित करने की आवश्यकता भी उत्पन्न करता है। यही कारण है कि यहाँ निवास करने वाले जनजातीय समुदायों का जीवन पूर्णतः प्रकृति–आश्रित और प्रकृति–सापेक्ष रहा है। यदि हम इस राज्य में जनजातियों की बात करें तो यहाँ मुख्यतः पाँच प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं – भोटिया, थारू, जौनसारी, बुक्सा और राजी। इन सभी जनजातियों की जीवनशैली, परंपराएँ और सांस्कृतिक व्यवहार भिन्न–भिन्न होने के बावजूद इसमें एक समानता के तत्व भी विद्यमान पाये जाते हैं; प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान और उसके साथ संतुलित सह–अस्तित्व की भावना।

भोटिया जनजाति मुख्यतः उच्च हिमालयी क्षेत्रों में निवास करती है और इनका जीवन पशुपालन तथा सीमावर्ती व्यापार पर आधारित रहा है। इनके जीवन में वन और पर्वत केवल संसाधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्ता के रूप में भी विद्यमान हैं। थारू जनजाति तराई क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि तथा वनों पर आधारित जीवनयापन करती है। इनके सांस्कृतिक व्यवहारों में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। इसी प्रकार जौनसारी जनजाति देहरादून के जौनसार–बावर क्षेत्र में निवास करती है, जहाँ सामुदायिक जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के सामूहिक उपयोग की परंपरा आज भी जीवित है।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:3(5), March 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

बुक्सा और राजी जनजातियाँ अपेक्षाकृत छोटे समुदाय हैं, जिनका जीवन भी वन और प्राकृतिक संसाधनों के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। इन सभी जनजातियों की विशेषता यह है कि इन्होंने अपने परिवेश के अनुसार जीवन जीने की ऐसी पद्धतियाँ विकसित की हैं, जो पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में सहायक हैं। उनके द्वारा निर्मित सामाजिक नियम, धार्मिक आस्थाएँ और आर्थिक गतिविधियाँ इस प्रकार संरचित हैं कि वे प्रकृति का अंधाधुंध दोहन न करके उसका संरक्षण सुनिश्चित करें। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उत्तराखण्ड का जनजातीय परिदृश्य केवल सांस्कृतिक विविधता का उदाहरण नहीं है, बल्कि यह पर्यावरण के साथ संतुलित जीवन जीने की एक सजीव प्रयोगशाला के रूप में भी देखा जा सकता है।

समकालीन पर्यावरणीय समस्याएँ

वर्तमान समय में पर्यावरणीय समस्याएँ वैश्विक स्तर पर गंभीर चिंता का विषय बन चुकी हैं। उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य भी इन समस्याओं से अछूते नहीं हैं। यहाँ की भौगोलिक संवेदनशीलता के कारण पर्यावरणीय असंतुलन के प्रभाव अधिक तीव्रता से दिखाई देते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम के स्वरूप में अनियमितता बढ़ी है, जिससे कृषि और जल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वनों की अनियोजित कटाई और अतिक्रमण के कारण जैव विविधता में निरंतर कमी आ रही है। इसके परिणामस्वरूप वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं और मानव–वन्यजीव संघर्ष की घटनाएँ बढ़ रही हैं। आये दिन भालू एवं तेंदुआ द्वारा ग्रामीणों पर हमले की खबरें प्रकाशित होना इसी का उदाहरण मात्र है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूस्खलन, बाढ़ और सूखा आदि की आवृत्ति और तीव्रता में भी वृद्धि देखी जा रही है। पर्वतीय क्षेत्रों में अनियोजित निर्माण और संसाधनों का अत्यधिक दोहन इन आपदाओं को और अधिक गंभीर बना देता है। इसके अतिरिक्त, जल स्रोतों का सूखना और पेयजल संकट भी एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उभर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण, विशेष रूप से प्लास्टिक और अन्य अपशिष्टों के कारण, प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। ये सभी समस्याएँ इस बात का संकेत हैं कि आधुनिक समय में विकास के नाम पर कहीं न कहीं पर्यावरणीय संतुलन की अनदेखी की जा रही है।

पारंपरिक ज्ञान की प्रासंगिकता

वर्तमान समय की गंभीर एवं विचारणीय उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए जनजातीय संस्कृति में निहित ज्ञान एक महत्वपूर्ण विकल्प उपलब्ध कराती है। यह ज्ञान स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ है, इसलिए यह अधिक व्यावहारिक और प्रभावी है। वन संरक्षण के क्षेत्र में यदि हम बात करें तो 'देववन' और सामुदायिक वन प्रबंधन की परंपराएँ आज भी प्रासंगिक हैं। यदि इन्हें आधुनिक वन नीतियों के साथ समन्वित किया जाए, तो वनों की कटाई और जैव विविधता के ह्रास को रोका जा सकता है। इसी प्रकार, जल प्रबंधन की पारंपरिक प्रणालियाँ जैसे नौला, धारा और चाल–खाल आदि आज के जल संकट के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

कृषि के क्षेत्र में 'बरहनाजा' जैसी मिश्रित खेती पद्धतियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक हो सकती हैं। ये पद्धतियाँ कम संसाधनों में भी टिकाऊ उत्पादन सुनिश्चित करती हैं और भूमि की उर्वरता को बनाए रखती हैं। इसी प्रकार पारंपरिक औषधीय ज्ञान स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में एक वैकल्पिक और सुलभ प्रणाली प्रदान करता है। यह विशेष रूप से ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में अत्यंत उपयोगी हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जनजातीय ज्ञान प्रकृति के साथ संतुलन और संयम की शिक्षा देता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक उपभोक्तावादी जीवनशैली के विपरीत है, जो संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को बढ़ावा देती है। इसलिए, यदि इस ज्ञान को अपनाया जाए, तो न केवल पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान संभव है, बल्कि एक संतुलित और सतत जीवनशैली भी विकसित की जा सकती है। लेकिन यह प्रक्रिया जितनी सरल प्रतीत होती है, वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। जिसका समय रहते आकलन करना तथा उसका समाधान करना आवश्यक है।

चुनौतियाँ

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि उत्तराखण्ड की जनजातीय संस्कृति में निहित पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान अत्यंत समृद्ध और उपयोगी है लेकिन अन्य पारंपरिक संस्कृतियों के समान ही इस संस्कृति एवं इसमें निहित ज्ञान के समक्ष भी अनेक बाध्धएं खड़ी हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती इस संस्कृति में निहित पारंपरिक ज्ञान का धीरे–धीरे लुप्त होना है। आधुनिकता, नगरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव में जनजातीय समुदायों की पारंपरिक जीवनशैली में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप यह ज्ञान नई पीढ़ी तक उसी रूप में हस्तांतरित नहीं हो पा रहा है। इस दिशा में पलायन भी एक गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। रोजगार और शिक्षा की तलाश में युवा पीढ़ी शहरों की ओर जा रही है, जिससे पारंपरिक ज्ञान की निरंतरता बाधित हो रही है। जब समुदाय का युवा वर्ग ही अपने मूल परिवेश से दूर हो जाता है, तो ज्ञान के संप्रेषण की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से कमजोर पड़ जाती है।

इसके अतिरिक्त, इस ज्ञान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण न होना भी एक बड़ी समस्या है। क्योंकि यह ज्ञान मुख्यतः मौखिक परंपरा पर आधारित है, इसलिए इसके लुप्त होने का खतरा अधिक है। आधुनिक समय में शिक्षा एवं अन्य माध्यमों से भी इस इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का ठोस पहल देखने को नहीं मिलता। जिसके कारण आज यह अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर इसमें निहित प्यावरणीय ज्ञान के संरक्षण के मार्ग में एक बड़ी बाधा मानसिकता की भी है। आज जनजातीय एवं अन्य समुदाय युवाओं द्वारा अपनी संसकृति में निहित इस ज्ञान को 'अवैज्ञानिक' या 'पिछड़ा' समझ उनकी उपेक्षा करते हैं, जिसके कारण इस ज्ञान का निरंतर क्षरण हो रहा है। जिसका एक बड़ा कारण बाजारवाद और उपभोक्ताावाद की प्रवृत्तियाँ भी है। जो समाज में आधुनिकता के नाम पर परंपरा से दूर जाने को बाध्य करती है।

समाधान

पर्यावरणीय ज्ञान की वर्तमान प्रासंगिकता एवं चुनौतियों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जनजातीय संस्कृति में निहित पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान सामयिक परिवेश में पर्यावरण संबंधी समस्याओं के समाधान में कारगर है लेकिन यह तभी संभव है, जब इनके मार्ग की बाधाओं को समय रहते दूर किया जा सके। यह एक ऐसी

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:3(5), March 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

समस्या है, जिसका समाधान सिर्फ नीति निर्माण से संभव नहीं है अपितु इसके लिए स्थानीय संस्कृति में निहित ज्ञान का समुचित उपयोग आवश्यक है। इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एक समग्र और बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसके लिए निम्नलिखित कदम उठाया जाना आवश्यक है –

- सर्वप्रथम पारंपरिक ज्ञान का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण किया जाना आवश्यक है। इसके लिए स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए, ताकि ज्ञान को उसके वास्तविक संदर्भ में संरक्षित किया जा सके।

- आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ जनजातीय संस्कृति में निहित पारंपरिक ज्ञान का समावेशन अत्यंत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस दिशा में एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में स्थानीय ज्ञान, लोक परंपराओं और पर्यावरणीय व्यवहारों को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना आवश्यक है। इससे न केवल विद्यार्थियों में पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ेगी अपितु वे अपनी सांस्कृतिक विरासत से भी जुड़ाव महसूस करेंगे।

- जनजातीय समुदायों की संस्कृति में निहित पारंपरिक ज्ञान यथा कृषि प्रणाली, जल संरक्षण प्रविधि, प्राकृतिक संसाधनों के व्यवस्थित दोहन से संबंधित ज्ञान आदि को आधुनिक विज्ञान के साथ समन्वित करने की आवश्यकता है। यह समन्वय इस प्रकार होना चाहिए कि दोनों ज्ञान प्रणालियाँ एक–दूसरे की पूरक बनें, न कि प्रतिस्पर्धी।

- स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाना एवं जागरूक करना तथा स्थानीय स्तर पर प्र्यावरण संरक्षण से संबंधित निर्णय लेने में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करना। इससे वे अपने संसाधनों के प्रबंधन में सक्रिय भूमिका निभा सकें।

- पारंपरिक शिल्प और आजीविका के साधनों को प्रोत्साहित करके आर्थिक सशक्तीकरण सुनिश्चित करना जिससे पलायन की दर पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

- शोध और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से पर्यावरणीय ज्ञान का संरक्षण और संवर्द्धन किया जाना आवश्यक है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को इस दिशा में विशेष पहल करनी होगी ताकि जनजातीय संस्कृति में निहित पारंपरिक ज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझा और विकसित किया जा सके।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड की जनजातीय पारंपरिक संस्कृति में निहित पर्यावरणीय ज्ञान केवल अतीत की विरासत नहीं है बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। यह ज्ञान प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की ऐसी दृष्टि प्रदान करता है जो आज के पर्यावरणीय संकट के समाधान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जनजातीय समुदायों ने अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर जो ज्ञान विकसित किया है, वह न केवल व्यावहारिक है बल्कि उसमें नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य भी निहित है। यह ज्ञान हमें यह सिखाती है कि पर्यावरण संरक्षण केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है बल्कि इसके लिए एक संवेदनशील और सर्वसहभागितापूर्ण जिम्मेदारी की भावना विकसित करने की आवश्यकता है। यह कदम एक ऐसे परिवेश को जन्म देगी जो एक ऐसी भावी पीढ़ी का निर्माण करेगी जो पर्यावरण के प्रति अधिक जागरूक और उत्तरदायी होगी। वर्तमान परिवेश में यह न केवल सामयिक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है बल्कि वर्तमान समय की मांग बन चुकी है।

संदर्भ

- चक्रवर्ती, तापस, उत्तराखण्ड हिमालय की गोद में, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, 2021
- वर्मा, डॉ0 सुभाष चन्द्र, उत्तराखण्ड की थारू एवं बुक्सा जनजातियाँ, आर0 पी0 पब्लिकेशन्स दिल्ली, 2016
- रावत, जयसिंह, उत्तराखण्ड जनजातियों का इतिहास, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, 2013
- सिंह, राधेश्याम लोक साहित्य एवं संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली, 2024
- ैपअंए टंदकंदंण ैजंलपदह /सपअमरू ॅवउमदए म्बवसवहल दंक क्मअमसवचउमदजण ैमक ठववोए 1988ण
- म्सूपदए टमततपमतण / चैपसवेवचील वित छम्ब्। ;छवतजी.म्ंज थतवदजपमत /हमदबलद्धण ैपससवदहरू छवतजी.म्ंज थतवदजपमत ।हमदबलए 1957ण
- दैनिक समाचार पत्र अमर उजाला